International Journal of Sanskrit Research 2020; 6(1): 61-64

International Journal of Sanskrit Research

अनन्ता

ISSN: 2394-7519
IJSR 2020; 6(1): 61-64
© 2020 IJSR
www.anantaajournal.com
Received: 04-11-2019
Accepted: 06-12-2019

मीना देवी
Research Scholar, Sanskrit Department, G.D.H.G. College, Moradabad, M.J.P.R.U, Bareilly, Uttar Pradesh, India

डॉ. गीता परिहार
एसोसिएट प्रोफेसर, संस्कृत विभाग गोकुलदास हिन्दू गर्ल्स (पी0जी0) कॉलिज, मुरादाबाद, उत्तर प्रदेश, भारत

Corresponding Author:
मीना देवी
Research Scholar, Sanskrit Department, G.D.H.G. College, Moradabad, M.J.P.R.U, Bareilly, Uttar Pradesh, India

महर्षि पतंजलि द्वारा प्रदत्त अष्टांग योग की वर्तमान समय में प्रासंगिकता/उपादेयता

मीना देवी, डॉ. गीता परिहार

''महर्षि पतंजलि'' द्वारा रचित ''योगदर्शन'' भारतीय दर्शनों में एक महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ है। महर्षि पतंजलि का यह अद्भुत, अग्रगण्य तथा भारतीय दर्शनों में एक ऐसा अनुपम ग्रन्थ है जिसकी तुलना वर्तमान समय में किसी भी दर्शन से नहीं की जा सकती क्योंकि ''बाबा रामदेव जी'' ने ''योग'' को पुस्तकीय क्षेत्र से बाहर निकालकर देश–विदेश में जन–जन तक पहुँचाया है। जीवन को सुन्दर एवं सुचारू रूप से व्यतीत करने के लिए योग सुन्दर साध्य मार्ग है। इस संसार में आकर जीवन–संग्राम में अपने को विजयी बनाना प्रत्येक मनुष्य का कर्तव्य है और विजयी बनने का मार्ग है – ''योग'' । आज इस योग ने इतनी लोकप्रियता प्राप्त कर ली है कि इसे शिक्षण संस्थाओं में अनिवार्य विषय के रूप में पढ़ाया जा रहा है और पढ़ाया जाता रहेगा। इससे प्रतीत होता है कि योग व्यावहारिक है, उपयोगी है, प्रासंगिक है। इस योगदर्शन की लोकप्रियता का यही कारण है कि यह योगियों को क्लेशों से सदा के लिए मुक्ति प्राप्त करा देता है।

योग मानव–जाति की सबसे प्राचीन और समीचीन सम्पत्ति है क्योंकि संहिताओं में, ब्राह्मणों में तथा उपनिषदों में इसका कहीं तो संकेत मात्र है और कहीं इसका सुन्दर विवेचन है जैसाकि ''श्वेताश्वतरोपनिषद्''[1] में ''क्रियात्मक– योग का बहुत ही सुन्दर वर्णन किया गया है। समाधिस्थ के समय सिर, गर्दन और रीढ़ को एक सीध में रखना, इन्द्रियों सहित मन को वश में करना, श्वास–प्रश्वास का नियम करना, समतल, पवित्र, मन के अनुकूल स्थान पर योग का अभ्यास करना, योगसिद्धि के होने पर लघुता, आरोग्य, वर्णप्रसाद, स्वरमधुरता आदि का स्वतः उत्पन्न होना–प्रत्याहार, प्राणायाम और समाधि के साक्षात् परिचायक है।

ऐसा माना जाता है कि मोहनजोदड़ों की खुदाई में अनेक योगमुद्रा वाली मूर्तियाँ मिली है। जो योग की प्राचीनता की निःसन्दिग्धता का प्रतीक है। योग के उपदेष्टा ''हिरण्यगर्भ'' है, कोई दूसरा पुरातन पुरूष नहीं है, ऐसा ''योगियाज्ञवल्क्य स्मृति'' में लिखा है।[2] अतः वे कहते हैं कि पतंजलि जी ने ''योग'' का अनुशासन किया है अर्थात् उपदिष्ट के पश्चात् कथन किया है न कि योग का प्रथमतः कथन।

> ''महर्षि पतंजलि'' द्वारा रचित ''योगदर्शन'' चार पादों में विभक्त है
> समाधिपाद, साधनपाद, विभूतिपाद, कैवल्यपाद।

पातञ्जलयोगदर्शन के साधनपाद में अष्टांगयोग द्वारा मानसिक द्वन्दों, मन की विभिन्न प्रतिकृतियों और उतार–चढ़ाव को नियन्त्रित करने की एक विधि है। कृष्ण के योग में हम पाते हैं कि बाह्य जगत में युद्ध चल रहा है किन्तु पतंजलि के योग में हम पाते हैं कि आन्तरिक जगत में युद्ध हो रहा है। योग के आठों अंग बुद्धिगम्य उपाय है जिनसे शारीरिक तथा मानसिक विकास होता है। अष्टांग योग का पालन करने से शरीर तथा मन तो स्वस्थ रहता ही है, साथ ही साधक सामाजिक प्राणी बनकर आध्यात्मिकता को प्राप्त कर कैवल्य प्राप्त करता है। अधिकांश रोग मानसिक तनाव के कारण होते हैं। ध्यानयोग के नियमित अभ्यास से मस्तिष्क तनाव–मुक्त हो जाता है।

''पातंजल योगदर्शन'' के ''साधनपाद'' में ''अष्टांगयोग'' को दो भागों में विभक्त किया गया है– 1– बहिरंग साधन, 2– अन्तरंग साधन

1– बहिरंग साधन – यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार ये पाँच बहिरंग साधन है।

2– अंतरंग साधन – धारणा, ध्यान, समाधि ये तीन अन्तरंग साधन है।

> ''पातंजल योगदर्शन के ''साधनपाद'' में ''अष्टांगयोग'' का सूत्र इस प्रकार है –
> ''यमनियमासनप्राणायामप्रत्याहारधारणाध्यानसमाधयोऽष्टावऽ.गानि।।''[3]

अर्थात् ''यम्, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान और समाधि में आठ अंग योग के अंग है।'' यहाँ हम सभी की विस्तृत चर्चा करते हैं–

(1) यमः यम का अर्थ है – 'संयम' । 'यम' के सन्दर्भ में 'महर्षि पतंजलि' लिखते हैं कि – ''अहिंसासत्यास्तेयब्रहाचर्यापरिग्रहा यमाः ।।''[4]

अर्थात् 'अहिंसा, सत्य, अस्तेय ब्रह्मचर्य तथा अपरिग्रह ये पाँच यम हैं। यम का मुख्य उद्देश्य साधक को हिंसादि कर्मो में प्रवृत्त होने से रोकना है। यम के भी पाँच भेद हैं –

(I) अहिंसाः 'अहिंसा का अर्थ है – द्वेष रहित होना। द्वेष हिंसा है, कुविचार मात्र हिंसा है, किसी का बुरा चाहना और कटु वचन बोलना भी हिंसा है। कहने का तात्पर्य यह है कि सर्वदा तथा सर्वथा सब प्राणियों के ऊपर द्रोह न करना अहिंसा है। जैसाकि महर्षि पतंजलि जी ने लिखा है – ''अहिंसा, प्रतिष्ठायां तत्सन्निधौ वैरत्यागः।''[5]

(II) सत्यः सत्य के विषय में पतंजलि जी ने लिखा है –

''सत्यप्रतिष्ठायां क्रियाफलाश्रमत्वम् ।''[6]

अर्थात् ''सत्य में प्रतिष्ठित योगी को यह सामर्थ्य प्राप्त हो जाती है कि वह अपने वचन से अधार्मिक को धार्मिक बना देता है तथा किसी को भी स्वर्ग प्राप्ति का आशीर्वाद देकर स्वर्ग प्राप्त करा देता है।'' मन और वचन का यथार्थ होना अर्थात् जैसा देखा गया था, अनुमान किया गया था उसी के अनुसार मन तथा वचन का होना। इसका दूसरा अर्थ यह भी है कि जिस वचन से दूसरों की भलाई हो, सन्मार्ग के लिये प्रोत्साहन मिलता हो, वह सत्य है अर्थात् जिससे लोकहित हो, वह सत्य है और जिससे अहित हो वह असत्य है।

(III) अस्तेयः जैसाकि योगदर्शन में लिखा हुआ है – ''अस्तेयप्रतिष्ठायां सर्वरत्नोपस्थानम्।''[7] अर्थात् अस्तेय की दृढ़ स्थिति होने पर सभी रत्नो की प्राप्ति होती है। 'व्यासदेव' कहते हैं कि 'शास्त्र की मर्यादा से बाहर होकर यदि दसरे का द्रव्य ले लिया जाय तो उसे स्तेय कहते हैं । मन से भी दूसरे की सम्पत्ति लेने की इच्छा सदा न हो उसे अस्तेय कहा जाता है।'

(IV) ब्रह्मचर्यः गुप्तेन्द्रिय के संयम को 'ब्रह्मचर्य' कहते हैं । 'ब्रह्म' का अर्थ है परमात्मा में आचरण करना, जीवन लक्ष्य में तन्मय हो जाना।'' ब्रह्मचर्य की स्थिति दृढ़ होने से वीर्य का लाभ होता है।'' ऐसा पातंजलयोगदर्शन के साधनपाद के 38वें सूत्र में लिखा हुआ है।[8]

(V) अपरिग्रहः विषयों में अर्जन दोष, रक्षण दोष, क्षय दोष, संग दोष तथा हिंसा दोष के दिखाई पड़ने से उन विषयों का जो परित्याग है उसे 'अपरिग्रह' कहा जाता है। अपरिग्रह से किस प्रकार फलप्राप्ति होती है। इस सम्बन्ध में लिखा हुआ है – ''अपरिग्रहस्थैर्ये जन्मकथन्तासम्बोधः।'' अर्थात् 'अपरिग्रह विषयक स्थिरता प्राप्त होने पर भूत, भावी तथा वर्तमान जन्म तथा उन जन्मों की विशिष्टता का साक्षात्कार (इस योगी को होता है) ।'
इस प्रकार अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य, अपरिग्रह इन पाँचों यमों का पालन करने पर ये महाव्रत हो जाते हैं। इनसे चित्त की शुद्धि होती है तथा मन को केन्द्रित करने में सहायता मिलती है। संकल्प सिद्धि प्राप्त करके आत्मबल मिलता है और पाँचों यमों के पालन से विवेकख्याति सिद्ध होती है।

(2) नियमः सूत्रकार 'महर्षि पतंजलि' नियम के स्वरूप बता रहे हैं–

''शौचसन्तोषतपःस्वाध्यायेश्वरप्रणिधानानि नियमाः ।।''[9]

अर्थात् 'शौच, सन्तोष, तप, स्वाध्याय तथा ईश्वर – प्राणिधान ये पाँच नियम कहे गये हैं –

(I) शौचः शौच का अर्थ है – 'पवित्रता' । शौच में साधक तन, मन को शुद्ध कर लेता है जिससे चित्त नियंत्रित हो जाता है। व्यासदेव जी ने शौच दो प्रकार का बताया है – 1– बाह्य शौच 2– आभ्यन्तर शौच

1– बाह्य शौचः बाहरी शुद्धि मृत्तिका जल से तथा पवित्र भोजन के करने से होती है एवं इसी जल से पात्रों, स्थानों तथा शरीर के अंगों को भी शुद्ध किया जाता है।

2– आभ्यन्तर शौचः चित्त के मलो का अच्छी तरह प्रक्षालन करना है। जैसे– राग, द्वेष, असूया, अभिमान, क्रोध आदि चित्त के विकारो को दूर करना ही आभ्यन्तर शौच है।

(II) सन्तोषः सन्तोष के विषय में व्यासदेव जी लिखते हैं कि 'जितने साधन से शरीर धारण किया जा सके उससे अधिक को ग्रहण करने की इच्छा के अभाव का नाम है सन्तोष ।'[10] इससे सिद्ध होता है कि सन्तोष से वह सुख प्राप्त होता है जिससे उत्तम और कोई सुख नहीं है। तृष्णाक्षय ही 'सन्तोष' कहलाता है। नियन्त्रित चित्त सन्तोषयुक्त होता है।

(III) तपः 'तपो द्वन्द्वसहनम्'[11] इति तपः अर्थात् सुख–दुख, आतप – शीत, भूख–प्यास आदि द्वन्द्वो को सहन करना 'तप' है। तप से शरीर एवं इन्द्रियों की शुद्धि होती है।

(IV) स्वाध्यायः 'मोक्षोपयोगी गीता उपनिषद् आदि ग्रन्थों का अध्ययन करना अथवा ओंकार का जप करना 'स्वाध्याय' के अर्न्तगत आता है।'[12] स्वाध्याय से ईष्ट देवता का साक्षात्कार होता है।

(V) ईश्वरप्रणिधानः परमगुरू परमात्मा में सभी कर्मों को अर्पित करना 'ईश्वर–प्रणिधान' कहा गया है। ईश्वरप्रणिधान से समाधि की सिद्धि होती है। यथोक्तम् – 'ईश्वर–प्रणिधानात्वा'[13]

(3) आसनः 'महर्षि पतंजलि'' योग के 'तृतीय अंग' आसन के विषय में लिखते हैं– 'स्थिरसुखमासनम्।'[14] अर्थात् 'जिससे स्थिरता एवं सुख की प्राप्ति होती है उसे आसन कहा जाता है।' ध्यान के लिये आवश्यक है कि साधक को ऐसा आसन ग्रहण करना चाहिए जिससे शरीर को सुख मिले, साथ ही मन की शान्ति बनी रहे । आसनों के अभ्यास करने से चित्त स्वाभाविक चंचलता का परित्याग कर एकाग्रता प्राप्त करता है। आसनजय करने से द्वंदजन्य पीड़ा नहीं होती।

(4) प्राणायामः प्राणायाम अर्थात् प्राण पर आधारित क्रिया होती है। जैसाकि –
पतंजलि जी 'प्राणायाम' को अग्रिम सूत्र से स्पष्ट करते हैं – 'तस्मिन् सति श्वासप्रश्वासयोर्गतिविच्छेदः प्राणायामः।'[15] अर्थात् 'उस आसन के सिद्ध हो जाने पर श्वास एवं प्रश्वास की स्वाभाविक गति का जो विच्छेद (रोकना) है वह प्राणायाम कहा गया है।'
व्यासदेव ने लिखा है कि – 'बाह्य वायु को भीतर ले जाना श्वास कहा गया है और उदरस्थ वायु को बाहर निकालना प्रश्वास कहा गया है। आसन की सिद्धि हो जाने पर उन दोनों की स्वाभाविक गति का विच्छेद अर्थात् श्वास–प्रश्वास का अभाव प्राणायाम कहा

जाता है।'[16] उक्त प्राणायाम के चार भेद बताये गये है – वृत्ति के आधार पर प्राणायाम तीन प्रकार का होता है –

''बाह्याभ्यन्तरस्तम्भवृत्तिदेशकालसंख्याभिः परिदृष्टो दीर्घसूक्ष्मः ।''[17]

अर्थात् 'पूर्व कथित प्राणायाम बाह्यवृत्ति, आभ्यन्तरवृत्ति तथा स्तम्भवृत्ति के भेद से तीन प्रकार का है। वही बाह्य तथा आभ्यन्तर देश, क्षण आदि में विभाजित काल एवं श्वास–प्रश्वास की गिनतीरूप संख्या के अभ्यास द्वारा निर्णीत होकर दीर्घ तथा सूक्ष्म हो जाता है।

उपर्युक्त प्राणायाम प्रकार के विषय में व्यासदेव जी इस प्रकार व्याख्या करते हैं

1. 'जिस प्राणायाम में प्रश्वास द्वारा प्राण की स्वाभाविक गति का अभाव होता है, वह बाह्यवृत्ति प्राणायाम है। इसी प्राणायाम को रेचक भी प्राणायाम कहते हैं।
2. जिस प्राणायाम में श्वास द्वारा प्राण की स्वाभाविक गति का अभाव होता है, वह आभ्यान्तरवृत्ति प्राणायाम कहा जाता है। इसे पूरक प्राणायाम कहते है।
3. जिस प्राणायाम में एक ही बार के विधारक प्रयत्न से प्राण की बाह्य एवं आभ्यन्तर वृत्तियों का अभाव होता है, वह
4. तृतीय स्तम्भवृत्ति प्राणायाम है। इसे कुम्भक प्राणायाम भी कहते हैं।'[18]

   उपर्युक्त तीनों प्राणायाम देशकाल के आधार पर भी परिलक्षित होते हैं। इन्हीं को श्वास – प्रश्वास की गणना के आधार पर मृदु, मध्यम तथा तीव्र प्राणायाम भी कहा जाता है। इन्हीं को कुशल योगी सतत् अभ्यास द्वारा क्रमशः रेचक, पूरक और कुम्भक को दीर्घ, दीर्घतर, दीर्घतम तथा सूक्ष्म बना देता है।

   उपर्युक्त तीन प्राणायाम से इतर चतुर्थ प्राणायाम के विषय में पतंजलि जी ने लिखा है कि – ''बाह्याभ्यन्तरविषयाक्षेपी चतुर्थः।।''[19]

   अर्थात् 'बाह्य एवं आभ्यन्तर की अपेक्षा न करने वाला चतुर्थ प्राणायाम भी है।' यह प्राणायाम बहुप्रयत्न से सिद्ध होता है। ऐसा प्राणायाम विष्णु–पुराण में ध्रुव का था। वहाँ यह बताया गया है कि तपस्या में संलग्न ध्रुव के प्राणनिरोध करने पर सम्पूर्ण प्राणियों के प्राण का निरोध हो गया।
5. प्रत्याहार – 'महर्षि पतंजलि' 'प्रत्याहार' को निम्न सूत्र से स्पष्ट करते हैं –

   ''स्वविषयासम्प्रयोगे चित्तस्य स्वरूपानुकार इवेन्द्रियाणां प्रत्याहारः।।''[20]

   अर्थात् 'इन्द्रियों का अपने –अपने विषयों के साथ संयुक्त न होने पर, जो चित्त के रूप की तरह रूप हो जाता है, वह प्रत्याहार है।' कहने का तात्पर्य यह है कि जब विभिन्न इन्द्रियाँ अपने बाह्य विषयों से हटकर चित्त के समान निरूद्ध हो जाती है तब इसे 'प्रत्याहार' कहते हैं।
6. धारणा – महर्षि पतंजलि जी अधोलिखित सूत्र से धारणा स्पष्ट करते हुए लिखते हैं कि – ''देशबन्धश्चित्तस्य धारणा ।''[21] अर्थात् 'चित्त को (बाहरी या भीतरी) किसी प्रदेश में बाँधना (एकाग्र करना) धारणा कही जाती हैं।' बारह बार प्राणायाम करने में जितना समय व्यतीत होता है उतने समय तक मन को ब्रह्म में स्थापित करें अर्थात् धारणा करें, यही धारणा है। भाष्यकार व्यासदेव स्पष्ट करते है – 'नाभिचक्र, हृदयकमल, मस्तक पर स्थित प्रकाशपुंज, नासिकाग्र, जिह्वाग्र इत्यादि प्रदेशों में अथवा बाह्य विषय चित्त को वृत्ति मात्र से बन्ध करना एवं एकाग्र करना धारणा है।'[22] इस प्रकार कहा जा सकता है कि जिस चित्त बन्ध में एकमात्र उसी देश का ज्ञान होता है जिसमें चित्त बद्ध किया गया हो तथा प्रत्याहृत इन्द्रियाँ स्वविषयों के ग्रहण से विमुख हो जाती हैं तब वह प्रत्याहार मूलक यह धारणा ही समाधि की अंगभूता धारणा हो जाती है।
7. ध्यान – महर्षि पतंजलि ध्यान के संदर्भ में इस सूत्र को लिखते हैं –

   ''तत्र प्रत्यैयकतानता ध्यानम् ।''[23]

अर्थात् 'उन नाभिचक्र आदि स्थानों में जो ज्ञानवृत्ति अथवा ध्येयाकार चित्तवृत्ति की एकाग्रता है, वह ध्यान कहा जाता है। कहने का आशय है कि धारणा की अवस्था में जिस नाभिचक्र आदि स्थान में हम चित्तवृत्ति को लगाते हैं यदि उसी स्थान पर यह (चित्तवृत्ति) स्थिर हो जाये, एकाग्र हो जाये तो उसे ध्यान कहते हैं।

(8) समाधि – ध्यान की चरम अवस्था को 'समाधि' कहते हैं । जैसाकि महर्षि पतंजलि ने लिखा है – ''तदेवार्थमात्रनिर्भासं स्वरूपशून्यमिव समाधिः ।।''[24] अर्थात् 'वह ध्यान ही जब ध्येय के स्वरूपमात्र का प्रकाशक होते हुए अपने (स्वयं ध्यान के) स्वरूप से शून्य–सा हो जाता है, तब वह समाधि कहलाता है।'

समाधि का यही स्वरूप प्रकारान्तर से व्यासदेव प्रकट करते हैं – 'जब ध्यान केवल ध्येयाकार रूप से भासमान होता हुआ, ध्येय के स्वरूप को धारण करके अपने ज्ञानात्मक स्वभाव से शून्य के समान हो जाता है अर्थात् ध्यान की पूर्ण परिपक्वावस्था ही समाधि कहलाती है।[25]

योग का विकास भारत में हुआ, जिसका ज्ञान हमें वेदों, उपनिषदों, गीता व सांख्य योग में मिलता है। भारत की संस्कृति और धरोहरों ने विश्व को बहुत कुछ ऐसा दिया है जो इंसान को सद्मार्ग की ओर अग्रसर करता है, इन्हीं में से एक है योग। कहा जाता है कि मोक्ष का द्वार है योग। फिर भी लोग कहते है कि योग के लिये समय कहाँ ? आज यदि भारत के साथ दुनिया के अधिकांश देशों में योग की लोकप्रियता बढ़ती जा रही है तो इसीलिए कि योग सम्पूर्ण स्वास्थ्य की सौगात देने वाली प्रक्रिया है। यह केवल शारीरिक व्यायाम भर नहीं, बल्कि एक ऐसी स्वस्थ जीवनशैली है जो मन को स्वस्थ रखती है। योग के अतिरिक्त दुनिया में ऐसा कोई व्यायाम नहीं जो इंसान को आत्मिक स्तर पर भी परिष्कृत करता हो। हमारे देश में आदिकाल से ही योग को एक आध्यात्मिक प्रक्रिया माना गया है। जो शरीर, मन और आत्मा को जोड़ते हुए सकारात्मक सोच और स्वस्थ जीवनर की राह सुझाती है।

योग भारत का एक बड़ा आविष्कार है। ऐसा देखने में आता है कि एक ओर आधुनिक जीवनशैली और खान–पान शारीरिक स्वास्थ्य को हानि पहुँचा रहे हैं तो दूसरी ओर काम का दबाव और घर से दफ्तर तक अनगिनत उलझनों से जूझता इंसानी मन बीमार हो रहा है। यह स्थिति वास्तव में चिन्तनीय है क्योंकि नागरिकों की मानसिक सेहत सामाजिक जीवन की बेहतरी से जुड़ा अहम पहलू है। आजकल तो लोग कम उम्र में ही माइग्रेन, अस्थमा, मधुमेह, रक्तचाप और मोटापा जैसी कई गम्भीर बीमारियों से जूझ रहे हैं। साथ ही मानसिक सेहत से जुड़ी परेशानियाँ जैसे – अनिद्रा, भूलने की बीमारी, भय, शक, क्रोध और अवसाद जैसी व्याधियाँ भी घेर रही हैं। ऐसे में योग बच्चो से लेकर बुजुर्गों तक सभी की सेहत सहेज सकता है।

विश्व स्वास्थ्य संगठन के अनुसार 2020 तक भारत में अवसाद दूसरा सबसे बड़ा रोग होगा। योग का एक अहम पक्ष यह भी है कि यह इंसान को प्रकृति से जोड़ता है। भौतिकवादी सोच की अपेक्षा आत्मिक उन्नति का मार्ग सुझाता है। इस प्रक्रिया का पहला कदम ही प्रकृति से जुड़ते हुए सकारात्मक जीवनशैली अपनाना है। योग सन्तुलित जीवनचर्या का आधार है। मन की वृत्तियों को अनुशासित करके अपराध के आंकड़ो में कमी भी लायी जा सकती है।

इस प्रकार योग मानव जाति के लिए अतुलनीय धरोहर है जिसने मनुष्य को उन्नति के चरमशिखर पर पहुँचा दिया है। महर्षि पतंजलि द्वारा वपन किये गये बीज को 'बाबा रामदेव जी' के अथक्

प्रयास ने इसे जन–जन तक पहुँचाया। आज हमें पूर्ण आशा है कि यह योग राष्ट्र के साथ–साथ सम्पूर्ण विश्व के लिये अवश्य हितकर है। यही कारण है कि आज योग की अवधारणा राष्ट्रीय न होकर अन्तर्राष्ट्रीय बन चुकी है। आज 21 जून को अन्तर्राष्ट्रीय योग दिवस संयुक्त राष्ट्र की ओर से घोषित किया जा चुका है।

इस प्रकार उपर्युक्त योग का अध्ययन करने से स्पष्ट होता है कि योग जीवन जीने की कला है। योग एक पूर्ण चिकित्सा पद्धति है। धर्म तो लोगों को खूँटे से बाँधता है और योग सभी को मुक्ति का मार्ग बताता है। योग को अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर पहचान मिलना भारत के लिये बहुत गर्व की बात है। यहाँ यह भी कहना उचित होगा कि जहाँ एक ओर भारत ने विश्व को योग की राह पर अग्रसर करके नीरोग रहने का मंत्र दिया, वहीं दूसरी ओर हमारे ही देश के लोग इसे न अपनाकर कई जानलेवा बीमारियों के शिकार हो रहे हैं। देश के प्रत्येक नागरिक खासतौर पर युवाओं को योग से जुड़ना चाहिए।

संदर्भ

1. श्वेताश्वतरोपनिषद् – 2/7–15
2. पातंजलयोगदर्शनं – टीकाकार – डॉ0 विमला कर्णाटक – समाधिपाद – पृ0 8
3. पा0यो0 – टीकाकार – डॉ रमाशंकर त्रिपाठी – 2/29, पृ0 241
4. पा0यो0 – टीकाकार – डॉ रमाशंकर त्रिपाठी – 2/30, पृ0 242
5. पा0यो0 – टीकाकार – डॉ रमाशंकर त्रिपाठी – 2/35, पृ0 258
6. पा0यो0 – टीकाकार – डॉ रमाशंकर त्रिपाठी – 2/36, पृ0 258
7. पा0यो0 – टीकाकार – डॉ रमाशंकर त्रिपाठी – 2/37, पृ0 259
8. पा0यो0 – टीकाकार – डॉ रमाशंकर त्रिपाठी – 2/38, पृ0 260
9. पा0यो0 – टीकाकार – डॉ रमाशंकर त्रिपाठी – 2/32, पृ0 249
10. पा0यो0 – (व्यासभाष्यम्)– टीकाकार – डॉ रमाशंकर त्रिपाठी पृ0 249
11. पा0यो0 – (व्यासभाष्यम्)– टीकाकार – डॉ रमाशंकर त्रिपाठी पृ0 250
12. पा0यो0 – (व्यासभाष्यम्)– टीकाकार – डॉ रमाशंकर त्रिपाठी पृ0 251
13. पा0यो0 – टीकाकार – डॉ रमाशंकर त्रिपाठी 1/23, पृ0 73
14. पा0यो0 – टीकाकार – डॉ रमाशंकर त्रिपाठी 2/46, पृ0 266
15. पा0यो0 – टीकाकार – डॉ रमाशंकर त्रिपाठी 2/49, पृ0 268
16. पा0यो0 – (व्यासभाष्यम्)– टीकाकार – डॉ रमाशंकर त्रिपाठी पृ0 268
17. पा0यो0 – टीकाकार – डॉ रमाशंकर त्रिपाठी 2/50, पृ0 269
18. पा0यो0 – (व्यासभाष्यम्)– टीकाकार – डॉ रमाशंकर त्रिपाठी पृ0 269–270
19. पा0यो0 – टीकाकार – डॉ रमाशंकर त्रिपाठी 2/51, पृ0 273
20. पा0यो0 – टीकाकार – डॉ रमाशंकर त्रिपाठी 2/54, पृ0 277
21. पा0यो0 – टीकाकार – डॉ रमाशंकर त्रिपाठी 3/1, पृ0 282
22. पा0यो0 – (व्यासभाष्यम्)– टीकाकार – डॉ रमाशंकर त्रिपाठी– विभूतिपाद, पृ0 283
23. पा0यो0 – टीकाकार – डॉ रमाशंकर त्रिपाठी 3/2, पृ0 283
24. पा0यो0 – टीकाकार – डॉ रमाशंकर त्रिपाठी 3/3, पृ0 284
25. पा0यो0 – (व्यासभाष्यम्)– टीकाकार – डॉ रमाशंकर त्रिपाठी– विभूतिपाद, पृ0 284